ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

इष्टोपदेश प्रवचन

(भाग - १)

श्रीमद् पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित
इष्टोपदेश शास्त्र पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन

उत्थानिका
टीकाकार का मंगलाचरण

परमात्मानमानम्य मुमुक्षुः स्वात्म-संविदे।
इष्टोपदेशमाचष्टे स्वशक्त्याशाधरः स्फुटम्।।

जो जिस गुण को चाहनेवाला हुआ करता है, वह उस उस गुण सम्पन्न पुरुष विशेष को नमस्कार किया करता है। यह एक सामान्य सिद्धान्त है। परमात्मा के गुणों को चाहनेवाले ग्रन्थकार पूज्यपादस्वामी हैं, अतः सर्व प्रथम वे परमात्मा को नमस्कार करते हैं।

प्रवचन नं. १ गाथा १-२ मंगलवार, दिनाङ्क १५-०३-१९६६
फाल्गुन कृष्ण ९, वीर संवत् २४९२

यह एक 'इष्टोपदेश' (शास्त्र) श्री 'पूज्यपादस्वामी' का रचित है। जिस पर टीका 'पण्डित आशाधर' ने की है। 'पूज्यपादस्वामी', 'कुन्दकुन्दाचार्य महाराज' के होने के बाद

'समन्तभद्राचार्य' दिगम्बर मुनि हुए; उनके बाद ये 'पूज्यपादस्वामी' हुए। बहुत प्रसिद्धि है। अन्दर आठ-दश बोल, बहुत बोल इसमें लिखे हैं। इसमें लिखा है - विदेहगमन। इसमें आता है, यह है न अन्दर **'विदेहजिनदर्शनपूदगात्रः'** १०८, श्लोक है। श्रवणबेलगोला का शिलालेख है न ? 'पूज्यपादस्वामी', जैसे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महाविदेहक्षेत्र में गये थे - यह बात तो प्रसिद्ध है, आठ दिन रहे थे और यहाँ आकर समयसार आदि शास्त्र बनाये। यह भी शिलालेख में लेख है।

देखो ! श्रवणबेलगोला का लेख है **'श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौंषधर्द्धिर्जीयाद्विदेह-जिनदर्शनपूतगात्र'** जिनका शरीर पवित्र हुआ है, आत्मशरीर। विदेह में भगवान परमात्मा विराजमान हैं, वहाँ ये 'पूज्यपादस्वामी' दर्शन करने गये थे। उसमें अन्दर (लिखा है); इस कारण यह पुस्तक हाथ में रखते हैं। समझ में आया ? इन भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' के बाद 'समन्तभद्राचार्य' हुए और पश्चात् 'पूज्यपादस्वामी' हुए, जिन्होंने 'सर्वार्थसिद्धि' की टीका की है ? 'आगम...' 'सर्वार्थसिद्धि' की टीका (यह) 'उमास्वामी' के तत्त्वार्थसूत्र की (टीका है।) बहुत समर्थ आचार्य पण्डित बाल ब्रह्मचारी थे और महा समर्थ आत्मज्ञान-ध्यान में दिगम्बर मुनि (थे।) दिगम्बर मुनि-सन्त तो महा धर्मधुरन्धर हुए हैं। उनमें यह एक 'पूज्यपादस्वामी' (हैं), इनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं। समाधिशतक है, यह इष्टोपदेश है, अन्य भी हैं। यह 'इष्ट उपदेश' इसका नाम हैं (अर्थात्) आत्मा को हितकारी उपदेश। इष्ट अर्थात् प्रियकारी उपदेश। आत्मा का हित मोक्ष है न ? वह मोक्ष कैसे हैं ? - उसका इसमें इष्ट उपदेश है।

'ॐ नमः सिद्धेभ्यः श्रीमत्पूज्यपादस्वामिविरचित इष्टोपदेश' 'श्रीपण्डित-आशाधरकृत संस्कृतटीका और भाषानुवाद सहित।'

टीकाकार का मंगलाचरण। पहला टीकाकार 'आशाधर' का मंगलाचरण है।

परमात्मानमानम्य मुमुक्षुः स्वात्म-संविदे।
इष्टोपदेशमाचष्टे स्वशक्त्याशाधरः स्फुटम्।।

यह क्या कहते हैं ? **जो जिस गुण को चाहनेवाला हुआ करता है, वह उस उस गुण सम्पन्न पुरुष विशेष को नमस्कार किया करता है।** जिस जीव को जो गुण चाहिए

है, वह उस गुण सम्पन्न पुरुष को नमस्कार करता है - ऐसा सामान्य सिद्धान्त और नियम है। कहो, ठीक है ? जिसे जो गुण चाहिए; वह गुण जिसमें प्रगट हुए हैं, उन्हें ही नमस्कार करता है, क्योंकि उस गुण की प्राप्ति स्वयं को चाहिए है। ऐसा सामान्य सिद्धान्त, अर्थात् नियम है।

प्रत्येक में नियम है न ? लक्ष्मीवाला देखो न ! जिसके पास लक्ष्मी हो, उसे बहुत आदर देते हैं या नहीं ? सेठ साहब... सेठ साहब कहते हैं। सब सेठ साहब समझने जैसे होते हैं, परन्तु पैसे का अर्थी हो....

मुमुक्षु : कहना तो चाहिए न !

उत्तर : कहना चाहिए, वह तो ममतावाला कहे। यह समयसार में (१७-१८ गाथा में आता है) - जो लक्ष्मी का अर्थी है, वह राजा की सेवा करता है; इसी प्रकार आत्मार्थी है, वह आत्मा की सेवा अथवा सत्समागम, ज्ञानी की सेवा करता है। कहो, समझ में आया ? यह समयसार में (चौथी गाथा में) आया है - 'श्रुत परिचित' में आया है। जो ज्ञानी है, स्वयं उसकी सेवा अनन्त काल में कभी भी नहीं। अर्थात् ? सेवा अर्थात् (ज्ञानी) जो कहते हैं, वह बात समझा नहीं; इसलिए उनकी वास्तविक सेवा ही नहीं की।

इसलिए यहाँ कहते हैं - जो जिस गुण को चाहता है, **चाहनेवाला हुआ करता है,..** हिन्दी है न ? **वह उस उस गुणसम्पन्न..** वह उस गुण से सहित पुरुष, पुरुष विशेष ऐसा। उस गुणवाला जो पुरुष है, **उसे नमस्कार किया करता है..** उसे नमस्कार करता है। यह एक सामान्य नियम हुआ। **परमात्मा के गुणों को चाहनेवाले..** 'पूज्यपादस्वामी' महा दिगम्बर सन्त थे, भावलिंगी छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले (सन्त थे)। छठवें-सातवें गुणस्थान में रहनेवाले। वे परमात्मा के गुणों को चाहनेवाले ग्रन्थकार 'पूज्यपादस्वामी' मंगलाचरण में प्रथम मांगलिक में परमात्मा को नमस्कार करते हैं। समझ में आया ? परमात्मा को याद करते हैं। ओहोहो... ! प्रभु ! मुझे मेरी शान्ति और पूर्ण आनन्द चाहिए है। पूर्ण आनन्द और शान्ति प्राप्त - ऐसे परमात्मा को ग्रन्थकार 'पूज्यपादस्वामी' सन्त-मुनि-महन्त हैं, वे नमस्कार करते हैं।

मूलग्रन्थकर्ता का मंगलाचरण। मांगलिक आचरण। मम अर्थात् पवित्रता। मंग

– पवित्रता को, ल अर्थात् लाती – प्राप्ति। अथवा मंग अर्थात् मम अर्थात् पाप और गल अर्थात् गाले – ऐसा जो मङ्गलाचरण, वह प्रथम यहाँ 'पूज्यपादस्वामी' कहते हैं।

मूलग्रन्थकर्ता का मंगलाचरण।

श्लोक – यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने।।१।।

अर्थ – जिसको सम्पूर्ण कर्मों के अभाव होने पर स्वयं ही स्वभाव की प्राप्ति हो गई है, उस सम्यक्ज्ञानरूप परमात्मा को नमस्कार हो।

विशदार्थ – जिसे आत्मा की परतन्त्रता (पराधीनता) के कारणभूत द्रव्य एवं भावरूप समस्त कर्मों के, सम्पूर्ण रत्नत्रयात्मक स्वरूप के द्वारा, सर्वथा नष्ट हो जाने से निर्मल निश्चल चैतन्यरूप स्वभाव (कथंचित् तादात्म्य परिणति) की प्राप्ति हो गई है, उस सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा को जो कि मुख्य एवं अप्रतिहत अतिशयवाला होने से समस्त सांसारिक प्राणियों से उत्कृष्ट है, नमस्कार हो।।१।।

गाथा - १ पर प्रवचन

श्लोक – यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने।।१।।

अर्थ – जिसको सम्पूर्ण कर्मों के अभाव होने पर.. भगवान परमात्मा, जिन्हें सम्पूर्ण कर्मों का अभाव हुआ है। **स्वयं ही स्वभाव की प्राप्ति हो गई है,..** वजन यहाँ है। परमात्मा ने अपने पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव की प्राप्ति की है। समझ में आया? स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा (प्राप्ति की है।) आत्मा अनन्त आनन्द आदि गुण सम्पन्न है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र – रत्नत्रयात्मक पुरुषार्थ (द्वारा प्राप्त किया)। परमात्मा हुए, वे भी आत्मा के रत्नत्रयात्मक पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त किया है – मोक्ष की प्राप्ति की है।

देखो! आचार्य पहला 'स्वयं' शब्द लिखते हैं। पुरुषार्थ के बिना आत्मा की मुक्ति

की प्राप्ति नहीं होती। परमात्मा ने अपने आत्मा में स्वसन्मुखता करके, पर से विमुखता करके, पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप अनन्त केवलज्ञान आदि (को) प्राप्त हुए। इसलिए कर्म का अभाव.... शब्दार्थ भले पहला ऐसा लिया कि ऐसे स्वयं पुरुषार्थ की प्राप्ति से प्राप्त किया, (वहाँ) कर्म का अभाव हो गया। कहो, समझ में आया? पुरुषार्थ से होता है - ऐसा कहते हैं। कोई इसे दे देवे - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : उस समय काल ऐसा था।

उत्तर : काल अर्थात् उसका पुरुषार्थ का काल। काल कहाँ देखना था? काल के सन्मुख देखना था? जिसे मोक्ष प्रिय है, जिसे अनन्त आनन्द प्रिय है; वह आनन्द की प्रियता काल के सन्मुख देखकर करता होगा? समझ में आया? अपना भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसके सन्मुख देखकर पुरुषार्थ करता है (तो) उसका काल पक गया है। समझ में आया? काल के सन्मुख देखे, उसे काल की प्रियता है। परन्तु किसके सामने देखना? काल अर्थात् क्या? और पर्याय अर्थात् क्या? उसके सन्मुख देखना है?

भगवान आत्मा - अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा...! कल दोपहर में तो बहुत कहा गया था, नियमसार! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय दर्शन, अनन्त अतीन्द्रिय बल से भरपूर प्रभु है। उसके स्वभाव-पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव की प्राप्ति परमात्मा ने की है। कहो, समझ में आया? कर्म टले- इसलिए यह प्राप्ति हुई - ऐसा नहीं है; पुरुषार्थ से की है। पुरुषार्थ रुचा, अन्दर आत्मा रुचा। ओहो...! जिसे अनादि काल से विकार प्रिय लगता था, अनादि काल से विकार प्रिय लगता था, (उसे) यह आत्मा प्रिय लगा, (इसका) पुरुषार्थ किया, तब केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है। कहो, बसन्तलालजी! काल पके, तब होता होगा? यह काल इसमें आ जाता है। आज अभी दूसरे (श्लोक) में कहेंगे। समझ में आया?

स्वयं ही स्वभाव की प्राप्ति हो गई है,.. है न? शब्द संस्कृत में। **'स्वयं संपूर्ण-रत्नत्रयात्मनात्मना'** लो! समझ में आया? **'स्वभावस्य निर्मलनिश्चलचिद्रूपस्य आप्तिर्लब्धिः'** आप्ति - लाभ-लब्धि। भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय रस का कन्द प्रभु, उसकी प्रीति-प्रियता में - श्रद्धा-ज्ञान और रमणता में जुड़े तो ये

परमात्मा केवलज्ञान को प्राप्त हुए। कहो, समझ में आया ? इसके अतिरिक्त केवलज्ञान को कोई परमात्मा प्राप्त नहीं हुए। यह अनन्त परमात्माओं की बात की है। अनन्त परमात्मा हुए, अभी हैं और भविष्य में इस विधि से ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। ओहोहो... !

यह इष्टोपदेश है। हितकारी उपदेश है, हितकारी। भगवान! भाई! तेरा हित तो परमानन्द है न! और परमानन्द की प्राप्ति प्रभु परमात्मा ने की, वह कहाँ से की ? कहाँ थी, वह की ? किसमें देखकर की ? क्या करके की ? समझ में आया ?

परमात्मा स्वयं ही शुद्ध आनन्दस्वरूप है। उसकी अन्तर की प्रियता की रुचि में जुड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन करके परमात्मपने को प्राप्त हुए हैं। कहो, इसमें समझ में आया ? भाषा क्या है ? **'स्वभावस्य निर्मलनिश्चलचिद्रूपस्य आप्तिर्लब्धिः'** समझ में आया ? **'संपूर्णरत्नत्रयात्मनात्मना'** सम्पूर्ण रत्नत्रय आत्मा से प्राप्ति हुई।

उस सम्यक्ज्ञानरूप परमात्मा को.. जिन्हें केवलज्ञान, सम्यग्ज्ञान, पूर्ण प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ है; जिन्हें आत्मा के आराधना से - भगवान आत्मादेव परमदेव का आराधन करके अन्तर में जिसने केवलज्ञान - एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने - ऐसे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है - ऐसे परमात्मा को मेरा नमस्कार है।

कहते हैं - मैं उन्हें नमता हूँ। मेरा नमन, मेरा झुकाव, मेरा घोलन, मेरा विनय ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर के प्रति जाता है। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने आत्म-आराधना करके केवल(ज्ञान) प्राप्त किया, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा... ! लक्ष्य में केवलज्ञान लिया और केवलज्ञानी ने इस प्रकार से प्राप्ति की - ऐसी प्रतीति हुई है और स्वरूप की रमणता आचार्य करते हैं। मेरी तुलना में जिन्हें पूर्ण दशा प्राप्त हुई और मुझे वह चाहिए है; मुझे इतनी दशा में ही रहना है - ऐसा नहीं।

पूर्णदशा... पूर्णदशा... पूर्णदशा... केवलज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान; केवलज्ञान, वह पूर्ण सम्यग्ज्ञान, उसकी प्राप्ति भगवान को हुई, उन्हें मेरा नमस्कार है। यह माङ्गलिक किया। यह, 'पूज्यपादस्वामी' सन्त, महन्त दिगम्बर महामुनि ने मङ्गलाचरण का यह माणेक स्तम्भ रोपा है।

यह तुम्हारे विवाह में करते हैं या नहीं ? क्या करे, वह लकड़ी डालते हैं या नहीं ?

माणेक कहाँ था ? वहाँ तो लकड़ी थी। उसका नाम माणेक देते हैं। माणेक नाम किसी को भी देते हैं। पत्थर को दे तो कौन इनकार करता है ? लकड़ियाँ हैं। चारों ओर ऐसे पाँखड़े (होते हैं), चार गति में भटकने के चार पाँखड़े होते हैं न उसमें ? डाला उसमें। रक्षासूत्र बाँधा है। रक्षासूत्र बाँधते हैं न ? क्या कहलाता है वह लाल ? रंगीन सूत की डोरी... रंगीन सूत की डोरी बाँधे और डाले। यह रक्षासूत्र, लो! अब यह विवाह करना, चार गति में भटकने का।

इसी प्रकार यहाँ चार गति को टालने का माणेक स्तम्भ रखा है। समझ में आया ? हमारे तो परमात्मपद चाहिए, भाई! आहा...हा...! जिन्होंने भव का नाश किया, जिन्होंने पूर्णानन्द की प्राप्ति की; उन्हें हम नमन करते हैं, क्योंकि हमें परमात्मपद के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए। आहा...हा..! देखो! स्वर्ग में नहीं चाहिए, पुण्य भी नहीं चाहिए, देह भी नहीं चाहिए, भव भी नहीं चाहिए; यह अपूर्ण दशा भी नहीं चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया ?

जिसे पूर्ण परमात्मा की तालबेली है - ऐसे जीव पूर्ण परमात्मा को ही नमस्कार करते हैं। वे फिर किस प्रकार ? कि जो आत्मा थे, उन्होंने रत्नत्रय का आराधन पर्याय में किया, तब वे सर्वज्ञपद को प्राप्त हुए। ऐसा कहकर वास्तविक तत्त्व की स्थिति भी बतलाई। समझ में आया ? अनादि के सिद्ध थे - ऐसा नहीं। उन्हें आत्मा का पद वस्तु अनादि की थी, अनन्त-अनन्त गुणसहित (थी)। उसका आराधना अन्तर (में) किया। देखो! आराधन किया पर्याय से। इसलिए द्रव्य कहा, उसमें शक्ति अनन्त है, पर्याय से आराधन किया। पूर्ण पर्याय को प्राप्त किया अर्थात् मोक्ष किया। जीवतत्त्व हो गया, उसका गुण तत्त्व हो गया, संवर-निर्जरा आदि - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-मोक्षतत्त्व हुआ। पूर्णतत्त्व-मोक्षतत्त्व। इतने तत्त्व इसमें समाहित कर दिये। अजीव और आस्रव तथा बन्ध का जिसमें अभाव किया कहा न ? **कृत्स्नकर्मणः अभावे।** अजीव का अभाव किया। अजीव था और आस्रव-बन्ध था, उसका अभाव किया। द्रव्यकर्म-भावकर्म अभी लेंगे, दोनों लेंगे। समझ में आया ? ओहो...! देखो! अब, (कहते हैं) -

विशदार्थ - जिसे आत्मा की परतन्त्रता के कारणभूत... (अर्थात्) निमित्तभूत, हों! समझ में आया ? टीका में निमित्त (शब्द) है। है न ? निमित्त, अन्तिम शब्द पड़ा है।

आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तस्य है न अन्तिम (शब्द)? निमित्त है। परतन्त्र आत्मा अपने स्वभाव का भान न करे, वह स्वयं परतन्त्र होता है; तब उस परतन्त्रता में कर्म निमित्त है। कर्म उसे परतन्त्र कराता नहीं है। **जिसे आत्मा की परतन्त्रता (पराधीनता)...** भगवान आत्मा अपने आनन्द शुद्धस्वभाव को भूलकर और राग-द्वेष विकार के आधीन होता है, वह स्वयं ही पराधीन अपने से स्वयं कर्ता होकर होता है; तब उसमें निमित्तकारण द्रव्यकर्म है, और वह भावकर्म भी कारण है। परतन्त्र होता है, उसमें वे राग-द्वेष निमित्त है न उसमें वे? राग-द्वेष करे, उसमें वह आधीन हो जाता है। राग-द्वेष से उसमें आधीन होता है; इसलिए कर्म में आधीन स्वयं होता है - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

द्रव्य एवं भावरूप समस्त कर्मों के,... देखो! भावकर्म पहले से उठाया, देखा? ज्ञान की हीनता की दशा, दर्शन की हीनता, वीर्य की हीनता और आनन्द, श्रद्धा व चारित्रगुण की विपरीतता। समझ में आया? ऐसी जो दशा- वह पराधीन स्वयं ने की है, उसे भावकर्म कहा जाता है; भावघातिकर्म कहा जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द की हीनदशा की, वह भी एक भावघातिकर्म हुआ। भाव, भावकर्म। दर्शन का उपयोग हीन किया और वीर्य हीन किया, विपरीत किया, हीन किया तथा राग-द्वेष और मिथ्याभ्रान्ति, यह विपरीत (भाव) - यह आनन्द से उल्टा दुःख; यह दर्शन से उल्टी मिथ्याश्रद्धा और चारित्र-शान्ति से उल्टे राग-द्वेष परिणाम। ऐसे परिणाम के आधीन हुआ जीव, परतन्त्रता को प्राप्त हुआ है। पूरे आत्मा को वास्तव में तो विकार भी परतन्त्रता का निमित्त है। समझ में आया?

अशुद्ध उपादान है न? अशुद्ध उपादान कहो, व्यवहार कहो या निमित्त कहो। पूर्ण शुद्ध उपादान भगवान, उसे विकार तो एक क्षणिक, निमित्त, वर्तमान, व्यवहारमात्र ही है। इतनी पराधीनता में उसे विकार और जड़कर्म को पराधीनता में निमित्त कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

भावरूप समस्त कर्मों के, सम्पूर्ण रत्नत्रयात्मक स्वरूप के द्वारा,.. देखो! देखो! स्पष्टीकरण किया। स्वयं है न? **सम्पूर्ण रत्नत्रयात्मक स्वरूप के द्वारा,..** भगवान आत्मा को अन्तर में पूर्ण सम्यग्दर्शन क्षायिक, सम्पूर्ण ज्ञान और चारित्र, उसके **स्वरूप के**

द्वारा,.. उस द्वारा। देखो! उस द्वारा। **सर्वथा नष्ट हो जाने से..** यह द्रव्यकर्म और भावकर्म **सम्पूर्ण रत्नत्रयात्मक स्वरूप के द्वारा, सर्वथा नष्ट हो जाने से..** कहो, समझ में आया? टीकाकार ने ऐसा लिया है। देखो! द्रव्यकर्म-भावकर्म - दोनों का नाश हुआ, तब उत्पन्न क्या हुआ?

निर्मल निश्चल चैतन्यरूप स्वभाव की प्राप्ति हो गई है,.. भगवान परमात्मा को... ओ...हो...! प्रवचनसार में नहीं लेते? कि जिनका नाम लेना भी महा लाभदायक है। नहीं आता? पहले शुरुआत में (गाथा १ से ५ में आता है)। आहा...हा...! भगवान...! समझ में आया? प्रवचनसार है। वीर-वीर भगवान की व्याख्या है। वीर-वीर। देखो! **परम भट्टारक महादेवाधिदेव, परमेश्वर, परमपूज्य जिनका नाम ग्रहण भी अच्छा है..** आहा...हा...! परमात्मा, ऐसे परमात्मा! ऐसे। एक समय में पूर्ण आराधन करके, द्रव्यकर्म-भावकर्म का नाश किया - ऐसे परमात्मा हैं। कहते हैं कि उनके गुणस्मरण की तो बात क्या करना! परन्तु नामग्रहण भी अच्छा है। ऐसे वर्धमान भगवान को हम नमस्कार करते हैं। प्रणाम करता हूँ - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : नामकरण की बहुत महिमा है।

उत्तर : परन्तु नाम में आता है कौन? स्मरण में आता है कौन? यह परमात्मा। यह परमात्मा, ऐसा। यह परमात्मा - ऐसा आता है न? भाव आये बिना नाम कहाँ से इसे बैठा अन्दर से? यह परमात्मा। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो बहुत थोड़े में भरा है न? इसमें भी गागर में सागर कही। देखो! सामने लिखा है। यह 'इष्टोपदेश' गागर में सागर है - ऐसा अन्दर लेखन में लिखा है। समझ में आया? और (एक व्यक्ति ने) तो लिखा है कि इसे उपनिषद... वेदान्त में आता है न? वेदान्त में उपनिषद आता है न? अध्यात्म अर्थात् उपनिषद - ऐसा यह इष्टोपदेश उपदेशा है। वहाँ है, शब्द है जरूर।

इसमें है, देखो! इसमें ही है, देखो! इष्टोपदेश है न पीछे? उसमें लिखा है, देखो! **इस ग्रन्थ को जैन उपदेश भी कहना चाहिए।** यह अन्तिम। अन्त में है न? एकदम अन्तिम पृष्ठ। 'इष्टोपदेश' शब्द का है न! 'इष्टोपदेश' शब्द नहीं पड़ा? ग्रन्थ है, उसके अन्दर में पाँचवीं लाईन - **इस ग्रन्थ को जैन उपदेश भी कहना चाहिए।** ऐसा है। **संसार से दुःखित प्राणियों के लिये तो इसका उपदेश परम औषध है।** यह आया था मुँह

के सामने में। **इस ग्रन्थ के जिन बातों का वर्णन का प्रचार-प्रसार होने से जगतितल का बड़ा कल्याण होगा।** देखो! समझ में आया? और कहीं, गागर में सागर भरी हो - ऐसा आता है। कहीं है। प्रस्तावना में है। कितने में? प्रस्तावना में। इसमें भी जिन उपदेश है (- ऐसा कहा है।) पहले शुरुआत में है। **इसको यदि जिन उपदेश भी कहा जाता है..** कहाँ आया? यह यहाँ आया, देखो! सातवाँ पृष्ठ। **आचार्यश्री ने गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है। यह छोटा सा ग्रन्थ है, जिसको कि पाठकगण अपने हाथ में लिये हुए हैं।** यह हाथ में है या नहीं? **आप लोग देखेंगे कि इसमें आचार्यश्री ने गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है।** उक्ति है न यह तो? **थोड़े में बहुत कुछ लिखा गया है। इसकी महत्ता, उपयोगितादि को देख पण्डितप्रवर आशाधरजी ने इस पर संस्कृत टीका लिखी जो कि उसमें सन्नद्ध है। वर्तमान में तो इसके मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं।** लो! समझ में आया? यह यही है न? यह तो दो जगह आ गया। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, जिन परमात्मा ने अपने आत्मा के अनन्त गुणसम्पन्न परमेश्वर को सम्यक्चारित्र-दर्शन-ज्ञान की आराधना द्वारा जिन ने आठ कर्मों का नाश किया। द्रव्यकर्म और भावकर्म जो परतन्त्रता का निमित्त था, उसे नष्ट किया और निर्मल निश्चल चैतन्यरूप निर्मल निश्चल उत्पाद किया।

निर्मल निश्चल चैतन्यरूप केवलज्ञान स्वभाव की प्राप्ति हो गई है,.. यह कोष्टक में लिखा है, परन्तु टीका में तो स्पष्ट शब्द है। **(कथंचित् तादात्म्य परिणति) की प्राप्ति हो गई है,..** कथंचित् अर्थात् कि कोई त्रिकाल नहीं, यह एक समय की पर्याय है न? एक समय की पर्याय मात्र तादात्म्य परिणति प्रगट हो गयी है। प्रति समय बदलती है न? गुण और आत्मा को तादात्म्यपना नित्य है। क्या कहा?

आत्मा और ज्ञान-दर्शन व आनन्द आदि गुण और आत्मा को तादात्म्यपना नित्य है और उनकी पर्याय को नित्य तादात्म्यपना नहीं है। एक समय की पर्याय, इसलिए कथंचित् तादात्म्य है; त्रिकाल तादात्म्य नहीं। समयमात्र तादात्म्य है। समझ में आया? तादात्म्य क्या है? और यह परिणति क्या? - ऐसा कहते हैं कि भगवान परमात्मा को एक

समय की पर्याय ऐसी प्राप्त हुई कि एक समयमात्र... किसी अपेक्षा से तादात्म्य अर्थात् एक समय मात्र अपेक्षा से तादात्म्य है ऐसा। दूसरे समय दूसरी; तीसरे समय तीसरी, ऐसा। समझ में आया ? वह का वही केवलज्ञान और आनन्द जो प्रगट हुए, वह दूसरे समय नहीं रहते। आहा...हा... !

ऐसे भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव या सर्वज्ञदेव परमात्मा को ऐसी दशा प्रगट हुई। देखो ! कथंचित् कहकर भी आशाधरजी ने यह टीका बहुत सरस की है। वस्तु जो है, उसके साथ ज्ञान-दर्शन के भण्डार जो गुण हैं, वे तो त्रिकाल तादात्म्य हैं, त्रिकाल तादात्म्य हैं और उसका आराधन करके पर्याय प्रगट की, वह त्रिकाल तादात्म्य नहीं; एक समयमात्र तादात्म्य है। समझ में आया ? क्या कहा ? बसन्तलालजी, क्या कहा ? ठीक (ऐसा) नहीं, क्या कहा ?

मुमुक्षु : एक समय की अवस्था प्राप्त हुई।

उत्तर : एक समय की अवस्था प्राप्त हुई, वह एक समय रहती है, दो समय नहीं रहती, बदल जाती है, उसे कथंचित् तादात्म्य कहा जाता है। इसलिए उसे कथंचित् तादात्म्य (कहा है)। तादात्म्य सही, परन्तु कथंचित् - किसी अपेक्षा से तादात्म्य अर्थात् एक समय की अवस्था से तादात्म्य है। ऐसे सब त्रिकाल तादात्म्य जो गुण और द्रव्य है - ऐसे नहीं है। अद्भुत बात, भाई ! समझ में आया ? भई ! हमारे पण्डितजी ने पूछा था। अभी सबेरे जवाब मुश्किल से थोड़ा-थोड़ा दिया। मैंने तो वहाँ बात की थी कि यह पर्याय का तादात्म्य कहना चाहते हैं। एक समय की है न ? भाई ! यह कहना चाहते हैं। त्रिकाली नहीं, मतलब ऐसा। तादात्म्य सही, परन्तु त्रिकाली तादात्म्य नहीं, एक समय का तादात्म्य है।

ऐसे परमात्मा को पहिचानकर, हे भगवान ! आपको जो केवलज्ञान दर्शन आदि हुए, वे एक समय आपके साथ तद्रूप रहते हैं; दूसरे समय दूसरी दशा हो जाती है। ऐसे परमात्मा को, इसलिए देखो ! यह अन्यमती यह परमेश्वर ठहराते हैं, उन्हें पर्याय बिना के ठहराते हैं। वह पर्याय पूर्ण, वापस पलटे नहीं - ऐसा ठहराते हैं। वे परमात्मा ही नहीं हैं - ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

जिनका आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न है, उसके गुण अनन्त हैं, उसका आराधन

करके शक्ति में से व्यक्तता पर्यायरूप प्रगट की, वह पर्याय भी एक समय रहती है, फिर दूसरे समय दूसरी होती है। ऐसा परमात्मा का भी स्वरूप और रूप है। ऐसे परमात्मा को पहिचानकर नमस्कार किया है। जय भगवान परमात्मा, ऐसे (पहिचाने बिना) नहीं। समझ में आया?

उस सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा को.. केवलज्ञान लेना है, हों! **संज्ञान** लेना है? **संज्ञान** शब्द पड़ा है न? **संज्ञानरूपाय** सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा। पूर्ण ज्ञान... ज्ञान, केवलज्ञान। तीन काल-तीन लोक एक समय में पूर्ण ज्ञात हों - ऐसे **संज्ञान। आत्मा को जो कि मुख्य एवं अप्रतिहत अतिशयवाला होने से..** मुख्य का अर्थ उत्कृष्ट है। 'मुख्य' शब्द अन्दर कहीं नहीं पड़ा। उत्कृष्ट है न? 'उत्कृष्ट' शब्द है। 'उत्कृष्ट' है न? **संसारीजीवेभ्य उत्कृष्ट आत्मा -** ऐसा शब्द पड़ा है।

जो आत्मा... कैसे हैं? संसार से अलग उत्कृष्ट आत्मा हैं। पर्याय के परिणमन की अपेक्षा से। उत्कृष्ट अर्थात् मुख्य और **अप्रतिहत अतिशयवाला..** कहो, समझ में आया? जो दशा प्रगटी, वह वापस गिरे - ऐसा नहीं है। वे कहते हैं न, भगवान होते हैं और फिर वापस जन्म धारण करते हैं, भक्तों के लिये अवतार धारण करते हैं, राक्षसों का नाश करने (आते हैं)- यह सब गप्प की बातें मिथ्या हैं; इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है।

अप्रतिहत अतिशयवाला.. जिन्हें केवलज्ञान आदि आया ऐसा कि अप्रतिहत ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि प्रगट हुए हैं। **होने से समस्त सांसारिक प्राणियों से उत्कृष्ट है,..** यह मुख्य करके उत्कृष्ट कहा है। आचार्य महाराज कहते हैं कि ऐसे भगवान को मैं, पहिचानकर, समझकर, परमात्मा की दशा प्राप्त कैसे हुई (- यह) जानकर; हुए भी पर्याय में एक समय रहते हैं - ऐसे जीव को पहिचानकर - मैं नमस्कार करता हूँ। मेरा नमस्कार अन्ध नहीं है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **नमस्कार हो।** इसका दोहा किया है भाई ने। यह शीतलप्रसाद का है, हों!

दोहा - स्वयं कर्म सब नाश करि, प्रगटायो निजभाव।
परमातम सर्वज्ञ को, वंदो करि शुभ भाव।।१।।

'स्वयं स्वभावाप्तिः' इस पद को सुन शिष्य बोला - कि 'आत्मा को स्वयं ही

सम्यक्त्व आदिक अष्ट गुणों की अभिव्यक्तिरूप स्वरूप की उपलब्धि (प्राप्ति) कैसे (किस उपाय से) हो जाती है? क्योंकि स्व-स्वरूप की स्वयं प्राप्ति को सिद्ध करनेवाला कोई दृष्टान्त नहीं पाया जाता है, और बिना दृष्टान्त के उपरिलिखित कथन को कैसे ठीक माना जा सकता है? आचार्य इस विषय में समाधान करते हुए लिखते हैं कि' –

दोहा – स्वयं कर्म सब नाश करि, प्रगटायो निजभाव।
परमातम सर्वज्ञ को, वंदो करि शुभ भाव।।१।।

'शीतलप्रसाद' का है न यह ? 'शीतलप्रसाद'! मेरे तो सब इकट्ठा था। सात इकट्ठे किये... साहित्य है, साहित्य है, उसमें सब डाला है। ठीक है, उसमें क्या है, इकट्ठा करके लोगों को...

स्वयं कर्म सब नाश करि,.. यहाँ वजन यह है देखो! भगवान परमात्मा ने अपने स्वयं पुरुषार्थ द्वारा कर्म का नाश करके, जड़कर्म और भावकर्म – दोनों का स्वयं पुरुषार्थ द्वारा नाश करके। समझ में आया ? **प्रगटायो निजभाव..** द्रव्यकर्म-भावकर्म पर्याय का नाश किया। **'प्रगटायो निजभाव'** निजभाव अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा। जिन्हें अपनी पूर्णदशा प्रगट हुई। **परमातम सर्वज्ञ को,..** ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर को, **वंदो करि शुभभाव।** शुभभाव से उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। देखो! यहाँ शुभभाव रखा है, हों! पर को वन्दन का शुभभाव है; पर को वन्दन कहीं शुद्धभाव नहीं है। परमात्मा है, उन्हें वन्दन करे, वह शुभभाव है परन्तु कहते हैं कि ऐसा भाव धर्मात्मा को, पूर्ण परमात्मा की प्रीति है, (इसलिए) प्राप्त हुए को वन्दन का-नमस्कार का भाव आये बिना नहीं रहता। यह पहले श्लोक का अर्थ हुआ।

अब, **'स्वयं स्वभावाप्तिः' इस पद को सुन शिष्य बोला...** शिष्य को प्रश्न हुआ। **'स्वयं स्वभावाप्तिः' 'आत्मा को स्वयं ही सम्यक्त्व आदिक अष्ट गुणों की अभिव्यक्तिरूप स्वरूप की उपलब्धि (प्राप्ति) कैसे (किस उपाय से) हो जाती है?' 'स्वयं स्वभावाप्तिः'** शब्द पड़ा है न ? पहले श्लोक में – **'स्वयं स्वभावाप्तिः'** स्वयं हुई क्या ? दूसरा साधन-बाधन कुछ चाहिए या नहीं ? ऐसा। **'स्वयं' 'आत्मा को स्वयं ही सम्यक्त्व आदिक अष्ट गुणों की...'** समकित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि आठ गुण हैं न ? अव्याबाध, अमूर्तपना, अगुरुलघुपना आदि। अव्याबाध

– ऐसे आठ गुणों की अभिव्यक्ति अर्थात् प्रगटरूप। ये अभि अर्थात् प्रगटरूप। जो शक्ति में थे, उन्हें भगवान परमात्मा ने पुरुषार्थ द्वारा प्रगट किये। देखो! कितनी बात लेते हैं!

गुणों की अभिव्यक्तिरूप स्वरूप की उपलब्धि.. पर्याय में प्रगटरूप स्वरूप की प्राप्ति। अन्तर में थे, उन्हें शक्ति में से चित्चमत्कार में सभी गुण पड़े थे, उन्हें भगवान ने अभिव्यक्ति करके प्रगट किया, पर्याय में लाये। ऐसे गुणों को, शक्ति में थे, उन्हें वर्तमान पर्याय में लाये – पर्याय में प्रगट किये, पर्याय में अभिव्यक्ति करके प्रगट (किये।) समझ में आया? **ऐसा स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो जाती है?** महाराज! यह ऋद्धि उन्हें किस प्रकार प्राप्त हुई? मूल तो दृष्टान्त चाहता है, हों! शिष्य, दृष्टान्त चाहता है, शिष्य दृष्टान्त चाहता है, हों! उसके लिये कोई दृष्टान्त है? कि भई! वस्तु थी और ऐसे प्राप्त होती है – ऐसा कोई दृष्टान्त है? ऐसा चाहता है मूल तो।

कहते हैं, किस उपाय से प्राप्त हो जाते हैं? **क्योंकि स्व–स्वरूप की स्वयं प्राप्ति को..** स्व–स्वरूप की स्वयं प्राप्ति को **सिद्ध करनेवाला कोई दृष्टान्त नहीं पाया जाता है,..** ऐसा कहते हैं कि जिसे प्राप्ति हुई है, उसके लिये कोई दृष्टान्त होना चाहिए न? दृष्टान्त के बिना यह सिद्धान्त हमें किस प्रकार जमे? जो कोई प्राप्ति हुई है, वह इस प्रकार हुई है – इसका दृष्टान्त यहाँ होवे तो यह सिद्धान्त सिद्ध होगा न? समझ में आया? ऐसा बहुत जगह आता है। अमुक का दृष्टान्त नहीं, इसलिए वस्तु ऐसे नहीं; इसका दृष्टान्त बैठ सकता है, इसलिए यह वस्तु ऐसे है – ऐसा आता है, आता है। न्याय के ग्रन्थों में जहाँ चर्चा चले, वहाँ आता है न? इसका कोई दृष्टान्त ऐसा नहीं है कि तू सर्वज्ञ का निषेध कर सके। समझे न? इत्यादि। जहाँ जिस बात को सिद्ध करते हैं, वहाँ ऐसा आता है, हों! दृष्टान्त अन–उपलब्ध है और जो बातचीत की जाती है, उसका दृष्टान्त अनुपलब्ध है; इसलिए तेरा सिद्धान्त सत्य नहीं है।

यहाँ शिष्य पूछता है कि आप जो, सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने पूर्णानन्द की प्राप्ति स्वयं पुरुषार्थ से की – ऐसा कहते हो तो उसका कोई दृष्टान्त है या नहीं? दृष्टान्त के बिना हमें यह बात किस प्रकार जमे? जिसका सिद्धान्त हो, उसका कोई व्यवहार / दृष्टान्त होगा या नहीं? – ऐसा कहते हैं।

कोई दृष्टान्त नहीं पाया जाता है, और बिना दृष्टान्त के उपरिलिखित कथन को कैसे ठीक माना जा सकता है? शिष्य कहता है, इसका कोई दृष्टान्त नहीं तो यह कथन **कैसे ठीक माना जा सकता है?** समझ में आया? **आचार्य इस विषय में समाधान करते हुए लिखते हैं कि...** लो! इसमें समाधान किया जाता है।

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता (यथा)।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।।२।।

अर्थ – योग्य उपादान कारण के संयोग से जैसे पाषाणविशेष स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही सुद्रव्य सुक्षेत्र आदि रूप सामग्री के मिलने पर जीव भी चैतन्यस्वरूप आत्मा हो जाता है।

विशदार्थ – योग्य (कार्योत्पादनसमर्थ) उपादान कारण के मिलने से पाषाणविशेष जिसमें सुवर्णरूप परिणमने (होने) की योग्यता पाई जाती है, वह जैसे स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही अच्छे (प्रकृत कार्य के लिए उपयोगी) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की सम्पूर्णता होने पर, जीव (संसारी आत्मा) निश्चल चैतन्यस्वरूप हो जाता है। दूसरे शब्दों में, संसारी प्राणी, जीवात्मा से परमात्मा बन जाता है।

दोहा – स्वर्ण पाषाण सुहेतु से, स्वयं कनक हो जाय।
सुद्रव्यादि चारों मिलें, आप शुद्धता थाय।।२।।

शंका – इस कथन को सुन शिष्य बोला कि भगवन्! यदि अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामग्री के मिलने से ही आत्मा स्व स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब फिर व्रत समिति आदि का पालन करना निष्फल (निरर्थक) हो जायगा। व्रतों का परिपालन कर व्यर्थ में ही शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ?

समाधान – आचार्य उत्तर देते हुए बोले – हे वत्स! जो तुमने यह शंका की है कि व्रतादिकों का परिपालन निरर्थक हो जायेगा, सो बात नहीं है, कारण कि वे व्रतादिक नवीन शुभ कर्मों के बंध के कारण होने से, तथा पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों के एकदेश क्षय के कारण होने से सफल एवं सार्थक हैं। इतना ही नहीं, किन्तु व्रत सम्बन्धी अनुरागलक्षणरूप

शुभोपयोग होने से पुण्य की उत्पत्ति होती है। और वह पुण्य स्वर्गादिक पदों की प्राप्ति के लिए निमित्त कारण होता है। इसलिये भी व्रतादिकों का आचरण सार्थक है। इसी बात को प्रगट करने के लिए आचार्य आगे का श्लोक कहते हैं – ।।२।।

गाथा - २ पर प्रवचन

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता (यथा)।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।।२।।

इसका श्लोक पीछे आता है। देखो! **स्वर्ण पाषाण सुहेतु से, स्वयं कनक हो जाय।** है न बंगडी? यह तो जरा सा दृष्टान्त सरल होने के लिये अन्तिम पढ़ते हैं। **स्वर्ण पाषाण सुहेतु से, स्वयं कनक हो जाय।** स्वर्ण पाषाण, हों! अन्ध पाषाण नहीं। जिसमें से स्वर्ण न निकले वह नहीं, जिसमें से सोना अलग पड़े ऐसा स्वर्ण पाषाण लिया है, भाई! जिसमें से पृथक् न पड़े ऐसा दृष्टान्त नहीं। योग्य उपादान लेना है न? **स्वर्ण पाषाण सुहेतु से,...** स्वर्ण पाषाण, जिसमें सोना भरा है, मिट्टी भी है परन्तु **सुहेतु से,...** अग्नि आदि के सुनिमित्त से **स्वयं कनक हो जाय।** फिर स्वयं ही उपादान से सोना होता है, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा..!

यह सोना, जो ऐसी ताकत है वह स्वयं ही सोलहवान होते.. होते.. होते.. होते.. अपने आप सोलहवान हो जाता है। अग्नि निमित्त है, अग्नि कुछ करती नहीं, वह तो निमित्त है। सुहेतु – निमित्त कहा उसे परन्तु भाव हुआ उसे वह तो स्वयं भाव अन्दर अपना है सोना... यह तो अपने आता है न? पंचास्तिकाय में आता है, पंचास्तिकाय में आता है। स्वयं ही सोना (होता है) अग्नि निमित्त भले कहो तो भी सोना ही स्वयं ही उसके योग्य होने के लिये ऐसे शुद्ध होते... होते.. होते... होते... क्या कहलाता है? सोट... क्या कहलाता है तुम्हारे? सौ टंच का। स्वयं ही उसकी योग्यता से होता है। अभव्य में कहाँ योग्यता थी? अन्ध पाषाण में कहाँ योग्यता है? समझ में आया?

यह गिरनार में पत्थर में सोना है। गिरनार में पत्थर है न? (उसमें) सोना है परन्तु

वह सौ रुपये खर्च करे तब साठ रुपये निकलें। समझ में आया? किया था पहले, मशीन के सब प्रयोग कर लिये थे, देखा था न! हम गये थे, तब कहा यहाँ सोना लगता है, हमारे साथ एक सेठ था लालचन्द सेठ, लीमड़ी (का) नगर सेठ लालचन्द सेठ। अपने लालचन्द सेठ लीमड़ी संघवी... संघवी, नवलखा वहाँ वे थे न? साथ में थे न? कहा - सेठ! ये क्या दिखता है? कहा, इसमें सोना लगता है। सोना है परन्तु नहीं निकलता हो तब किसी ने कहा कि यहाँ अंग्रेज लोग और कुछ ऐसे लोगों ने मशीन चलायी, सौ रुपये खर्च करे तो साठ रुपये निकलते हैं, वह कौन निकाले इसे? लाख खर्च करे, तब साठ हजार का सोना निकले। यह तो परन्तु इसमें तो निकले ही सही इतना तो, परन्तु अकेला अंध पाषाण होवे उसमें से कुछ जरा भी नहीं निकलता।

यहाँ तो कहते हैं कि स्वर्ण पाषाण। जिसमें से सोना ऐसा तत्काल निकले, अन्दर ऐसी उसकी सोने की स्वयं की ताकत। **स्वयं कनक हो जाय।** सोना स्वयं परिणमते... परिणमते... परिणमते... परिणमते... सौ टंच का स्वयं हो जाता है। ऐसे **सुद्रव्यादि चारों मिलें,..** भगवान आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपनी योग्यता का भाव आदि मिले अर्थात् द्रव्य की योग्यता, क्षेत्र की योग्यता, काल की योग्यता और भाव की (योग्यता)। **चारों मिलें, आप शुद्धता थाय।** कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा ही स्वयं के पुरुषार्थ से शुद्ध उपादान से अपनी शुद्धता को प्राप्त करता है। यह सोने के दृष्टान्त से... शिष्य ने पूछा था कि दृष्टान्त है ऐसा कि जिसके साथ यह लागू पड़े? कि हाँ; स्वर्ण पाषाण का दृष्टान्त है। कहो, समझ में आया? देखो! अर्थ तीसरे पृष्ठ पर है न?

योग्य उपादान.. देखो! योग्य उपादान शब्द प्रयोग किया है। यह समय-समय पर्याय प्रगट होने की योग्य उपादान शक्ति इसकी स्वयं की है। उपादान तो त्रिकाल अलग है, भाई! यह तो वर्तमान योग्य उपादान, ऐसा। उसकी वर्तमान सोने की सोनेरूप प्रगट होने की प्रतिसमय उसकी योग्य उपादान ताकत है, उससे सोना ऐसा प्रगट हो जाता है। समझ में आया? आहाहा...! **योग्य उपादान कारण के संयोग से..** यह कारण लिया न इन्होंने! आहाहा...!

जैसे पाषाणविशेष स्वर्ण बन जाता है,... पाषाण विशेष अर्थात् सोने का

पाषाण। अकेला पत्थर कुछ नहीं, ऐसा। विशेष पाषाण अर्थात् स्वर्ण पाषाण। वह स्वर्ण पाषाण उस स्वर्ण में ही अपनी योग्यता से सोलह आने परिणमते... परिणमते... परिणमते... परिणमते... दो, तीन, चार (करते-करते) सोलह आने हो जाता है। तब बाह्य चीज को निमित्त कहा जाता है। अग्नि आदि को निमित्त कहते हैं। अग्नि से होता होवे तो पत्थर को नहीं कर दे ? - ऐसा कहते हैं। सोना यदि अग्नि से सोलहवान होता हो तो अन्ध पाषाण - पत्थर को अथवा पत्थर को (अग्नि दे और) सोना हो जाये। धूल में से होवे। कहो, बसन्तलालजी !

इसी प्रकार आत्मा में जिसकी योग्य उपादान शक्ति श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र योग्य समय-समय की प्रगट होने की स्वयं की शुद्धता की योग्यता है। वह स्वयं की शुद्धता से पूर्ण शुद्धता को पाता है। सोने का दृष्टान्त। कहो, समझ में आया ?

देखो ! यह इष्टोपदेश। क्या (है) ? यह इष्टोपदेश (अर्थात्) यह हितकारी उपदेश। सोना उसके योग्य उपादान से... निमित्त भले हो, परन्तु अपनी योग्यता के भाव के उपादान से,... द्रव्य ऐसा और भाव की योग्यता के भाव से वह शुद्ध स्वर्णपने को पाता है।

वैसे ही... यह दृष्टान्त हुआ। **सुद्रव्य सुक्षेत्र आदि रूप सामग्री के मिलने पर...** अर्थात् अपना भाव और बाहर में द्रव्य... आदि संहनन, क्षेत्र आदि... काल आदि उत्सर्पिणी आदि जो हो वह, भाव अपना। समझ में आया ? **सुद्रव्य सुक्षेत्र आदि रूप सामग्री के मिलने पर...** दूसरे निमित्त हैं, परन्तु भाव स्वयं का है। **जीव भी चैतन्यस्वरूप आत्मा हो जाता है।** भगवान चैतन्यस्वरूप आत्मा, अल्पज्ञरूप-राग आदिरूप जो है, वह चैतन्यस्वरूप आत्मा अपने अन्तर शुद्ध उपादान से... बाह्य में भले निमित्त हो। समझ में आता है ?

मुमुक्षु : प्राप्त होने पर ऐसा लिखा है।

उत्तर : हाँ, भले प्राप्त होने पर, मिलने पर - ऐसा कहा।

मुमुक्षु : न मिले तो नहीं होता।

उत्तर : नहीं, ऐसा नहीं। प्राप्त होने पर, मिलता ही है, पर कहाँ लिया है इसमें ? ऐई... ! पर कहाँ है इसमें ? **सामग्री के मिलने पर...** प्राप्त होने पर अर्थात् मिलने से। शीतलप्रसाद ने दो अर्थ किये हैं। एक बाह्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और एक अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव - ऐसे दो अर्थ किये हैं, शीतलप्रसाद ने।

अपने द्रव्य की भी ऐसी योग्यता हुई है, अपने प्रदेश की योग्यता हुई है। निमित्त के चार (बोल) और यहाँ के चार बोल हैं ऐसा लिया है। यह तो यहाँ ऐसा उपादान हो, तब ऐसे चार निमित्त होते ही हैं।

स्वयं को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने की योग्यता हो, वहाँ ऐसे बाह्य निमित्त, उसके योग्य निमित्त होते हैं। इसी प्रकार केवलज्ञान-केवलदर्शन को प्राप्त करने की योग्यता हो तो संहनन, मनुष्य देह आदि निमित्त होते ही हैं। प्राप्त होने पर क्या, होता ही हैं। भाषा व्यवहार से क्या समझावे? समझ में आया? ऐसा तो कहते हैं न? **योग्य उपादान कारण के संयोग से..** वहाँ भी संयोग लिया। योग्य उपादान... ऐई..! योग्य उपादान संयोग, वह संयोग है न? उसकी पर्याय कारण है न? द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है परन्तु पर्याय का वह संयोग है न? सम्बन्ध हुआ न इतना नया? समझ में आया? संयोग आता है या नहीं? ऐई..! कहाँ आता है?

मुमुक्षु : गुण और द्रव्य।

उत्तर : वह तो ठीक, यह तो पर्याय का संयोग। 'संयोग-वियोग' शब्द कहीं आता है न? प्रवचनसार में। पर्याय की प्राप्ति तो संयोग, उसको वियोग। संयोग-वियोग एक जगह आता है। पूर्व की पर्याय का वियोग, पर्याय की प्राप्ति संयोग - ऐसा आता है। कहाँ आता होगा क्या पता पड़े? उसमें - ज्ञेय अधिकार में निचली लाईन में है। समझ में आया? अभी याद (नहीं) आता। कहाँ कौन सी जगह हो? बड़ा समुद्र खोजने जाये? प्रवचनसार में कहीं है।

आत्मा में निर्मल पर्याय की प्राप्ति को संयोग कहते हैं और मलिन पर्याय के वियोग को वियोग कहते हैं। नाश को वियोग कहते हैं - ऐसा आता है। समझ में आया? देखना अब कहीं रात्रि में यह रखो तो सही। नीचे है, नीचे कहीं है। संयोग सम्बन्ध या (ऐसा कुछ है)। समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा द्रव्य से अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका एकाकार हो, तब नयी पर्याय का उसे संयोग होता है। संयोग हुआ न? (निर्मल पर्याय) नहीं थी और हुई न? ऐसा। नहीं थी और हुई, इसलिए सम्बन्ध, ऐसा। नहीं थी और हुई न? द्रव्य और गुण त्रिकाल है। उनकी एकाग्रता करने पर, नहीं थी और हुई, इसलिए उसे

(निर्मल पर्याय को) संयोग कहने में आता है। इसी प्रकार जो पूर्व की थी, उसका व्यय हुआ, उसे वियोग कहने में आता है। कहीं है, है अवश्य मस्तिष्क में। एक बार कहा था। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा...!

स्वयं भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर एकाग्रता करने पर जो नयी दशा हो, उसे योग्य उपादान का संयोग-उपादान कारण का संयोग कहने में आता है। समझ में आया कुछ? समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा... जैसे सोने को भी वह समय-समय की नयी पर्याय जो प्राप्त होती है, सोने में सोने की, वह भी उसे पर्याय का संयोग कहलाता है। उपादानकारण का संयोग (कहलाता है) समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा में... यह तो सब बातें ऐसी! यह इष्टोपदेश है, यह हितकारी उपदेश है। पूज्यपादस्वामी के मुख में से निकली हुई वाणी है। महामुनि सन्त, दिगम्बर मुनि थे, महा एकावतारी एकाध भव करके मुक्ति... मुक्ति... मुक्ति... मुक्ति... इन्हें हथेली में केवलज्ञान पड़ता! पंचम काल में भव हो गया, क्या करे? कहो समझ में आया?

भगवान आत्मा... जैसे सोना प्रति समय अपनी उपादान त्रिकाली शक्ति तो है परन्तु पर्याय की योग्यता... पर्याय की योग्यता की बात है न? प्रगट होने की योग्यता कहलाती है न? वह (द्रव्य) तो सबमें पड़ा है, वह अभव्य में भी सब पड़ा है। किस काम का? नियमसार में आता है, नहीं? मेरुपर्वत के नीचे सोना पड़ा है। किस काम का? व्यवहार के योग्य नहीं। नियमसार (गाथा 110) में आता है - मेरुपर्वत के नीचे सोना पड़ा है। कितना? अरबों मण, कितने मण का कहाँ पार है? किस काम का? - इसी प्रकार जिसकी पर्याय में प्रगट न हो, वह गुण किस काम का? ऐसा कहते हैं। आहाहा...!

भगवान आत्मा अनन्त गुण का धाम प्रभु पवित्र, वह पर्याय में प्रगट न हो तो वह गुण किस काम का? वह गुण ही कहाँ है? कहते हैं। वह गुण ही नहीं है। आहाहा...! समझ में आया? लो! पाषाण विशेष **स्वर्ण बन जाता है,..** यहाँ तो 'संयोग' शब्द आया न, इसलिए। समझ में आया? वहाँ भी कहा - उपादान कारण प्राप्त होने से। नीचे (अर्थ) करेंगे। **वैसे ही सुद्रव्य सुक्षेत्र आदि रूप सामग्री के मिलने पर..** सामग्री मिलने पर, उस प्रकार की पर्याय की भाव की सामग्री मिलती है न अन्दर? द्रव्य आदि निमित्त है।

उसकी भाव की सामग्री है न? शुद्ध उपादान पर्याय.. ओहोहो! कारण है, पर्याय है, समझ में आया?

जीव भी चैतन्यस्वरूप... देखो! नीचे रागरूप, परिणमनरूप, विकाररूप, अल्पज्ञरूप था; वह चैतन्यस्वरूप आत्मा नहीं हुआ था। अल्पज्ञ-पर्याय, अल्पज्ञ-दर्शन, अल्प वीर्य और राग-द्वेष परिणमन, वह चैतन्यस्वरूप आत्मा नहीं। चैतन्यस्वरूप भगवान अन्तर के उपादान के कारण के योग से चैतन्यस्वरूप आत्मा हो गया। अकेला चैतन्यज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा कहो या पूर्ण आत्मा, उसे चैतन्यस्वरूप आत्मा कहने में आता है। वह अपने उपादानकारण से हो गया है। निमित्त है, निमित्त से किसने इनकार किया? समझ में आया? आहाहा! वे (दूसरे) कहते हैं निमित्त से होता है।

मुमुक्षु : निमित्त का असर तो होता है न!

उत्तर : असर-फसर कैसी? असर कहाँ होता है? स्पर्श नहीं करता न।

यहाँ तो कहते हैं अपने सुद्रव्य क्षेत्र आदिरूप... इसमें भाव आ गया या नहीं अन्दर? भाव की सामग्री प्राप्त होने पर। निज पुरुषार्थ की जागृति के भाव की सामग्री मिलने से जीव भी चैतन्यस्वरूप आत्मा हो जाता है। नहीं तो क्या जड़स्वरूप था? परन्तु पर्याय में साधारण था, उसे क्या आत्मा कहें? ऐसा चैतन्य झलक उठे पूरा। केवलज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण वीर्य और अनन्त दर्शन, वह चैतन्यस्वरूप आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यह चैतन्यस्वरूप आत्मा। अल्पज्ञ, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य, वह चैतन्यस्वरूप आत्मा है? नहीं हीन आत्मा, व्यवहारी आत्मा साधारण है। निश्चयस्वभाव भगवान अपने शुद्ध उपादान की अन्दर की जागृति से पूर्ण चैतन्यस्वरूप व्यक्त / अभिव्यक्ति / प्रगटता हो गयी। समझ में आया? ऐसे परमात्मा को सोने का दृष्टान्त लागू पड़ता है। सोने का दृष्टान्त लागू पड़ता है, नहीं लागू पड़ता - ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ठीक दृष्टान्त देते हैं।

उत्तर : हाँ, दृष्टान्त भी ठीक बैठे, तब इसे सिद्धान्त सिद्ध हो न! (नहीं तो) किस प्रकार सिद्ध हो?

विशदार्थ - योग्य (कार्योत्पादनसमर्थ)... देखा! कार्योत्पादनसमर्थ। अकेला

कार्य हो, और अन्दर उपादान ध्रुव, ध्रुव उपादान, भाई! ऐसी यहाँ बात नहीं है। ऐई..! यहाँ तो कार्योत्पादनसमर्थ वर्तमान पर्याय है। देखो! भाषा ऐसी कहते हैं। आहाहा...! आत्मा में वर्तमान दशा में मोक्ष का कार्य उत्पन्न और वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसी कार्य उपादान की शक्ति प्रगट होने की योग्यता है, उसे कार्योत्पादनसमर्थ कहते हैं।

(कार्योत्पादनसमर्थ) उपादान कारण के मिलने से.. अपना उपादान कारण मिलने से। **पाषाणविशेष..** वह सोने का दृष्टान्त (दिया था वह)। सोना सोलहवान होने की योग्यता से कार्योत्पादनसमर्थ से उसमें पर्याय होती है, सोने में, हों! **पाषाणविशेष जिसमें सुवर्णरूप परिणमने (होने) की योग्यता पाई जाती है..** स्वर्णपना होने की - परिणमने की योग्यता वर्तमान पर्याय में होती है, ऐसा। **वह जैसे स्वर्ण बन जाता है,..** जैसे वह सोना बन जाता है।

वैसे ही अच्छे (प्रकृत कार्य के लिए उपयोगी).. अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। उसमें भाव अपना। समझ में आता है न? क्षेत्र भी असंख्यप्रदेशी अपना; द्रव्य स्वयं; काल स्वयं की समय की पर्याय। समझ में आया? और निमित्त में लो तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी ऐसे निमित्त में होते हैं।

(प्रकृत कार्य के लिए उपयोगी)... अपने मोक्षमार्ग के कार्य के लिये अथवा मोक्ष के कार्य के लिए **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की...** द्रव्य आदि व्रजनाराचसंहनन भी होता है, द्रव्य अपनी योग्यतावाला होता है, बाहर क्षेत्र जैसा हो, अन्दर असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में भी वे ऐसी योग्यता है, बाहर काल ऐसा अवसर्पिणी आदि हो, महाविदेह में मोक्ष जाने का कहते हैं न? अन्दर की काल की समय की योग्यता ऐसी होती है। बाहर के भावों का निमित्त भी अनुकूल होता है, अन्दर में भाव का अनुकूल होता है।

सम्पूर्णता होने पर जीव (संसारी आत्मा) निश्चल चैतन्यस्वरूप हो जाता है। निश्चल अर्थात् फिरे नहीं ऐसी चैतन्यदशा - सर्वज्ञपरमात्मा हो जाता है। समझ में आया? **दूसरे शब्दों में, संसारी प्राणी जीवात्मा से परमात्मा बन जाता है।** वह शब्द पड़ा अवश्य है न? **चैतन्यस्वरूप आत्मा हो जाता है...** चैतन्यस्वरूप आत्मा ऐसा कहा न? इसलिए, समझ में आया? '**आत्मनो जीवस्य भावो निर्मलनिश्चलचैतन्यं।**

...द्रव्यादिस्वादिसंपत्तौ द्रव्यमन्वयिभावः आदि येषां क्षेत्रकालभावानां...' ऐसा लिया, देखा? **'द्रव्यमन्वयिभावः'** ऐसा है न अन्दर? **'स्वाद् यश्च सुशब्दः स्वशब्दो वा आदियेषां ते स्वादयो द्रव्यदश्च स्वादयश्च। इच्छातो विशेषणविशेष्यभाव इति समाप्तः। सुद्रव्यं, सुक्षेत्रं, सुकालः सुभाव इत्यर्थः। ...प्रशंसार्थः...'** प्रशंसा को प्राप्त ऐसा प्रकृत कार्यरूपी पर्याय और निमित्त, उनकी प्राप्ति होने से भगवान आत्मा **जीवात्मा से परमात्मा बन जाता है।** संसारी प्राणी है, उस पर्याय का नाश करके परमात्मा होता है। वह अपने पुरुषार्थ से होता है। दूसरी गाथा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)